* श्रीः *

* श्रीमते रामानुजाय नमः *

श्रीमत्पराशरभट्टार्य

प्रणीता

अष्टश्लोकी

श्रीरङ्गम् (मद्रास) स्थितेन श्रीगोविन्दाचार्यशास्त्रिकृता

सान्वय हिन्दी व्याख्या समलंकृता

सम्पादक :

केशवप्रपन्न शास्त्री, वृन्दावन

प्रकाशक :

वासुदेव रामानुजदास (बृजलाल गोइनका)

गीता भवन, पो०–स्वर्गाश्रम, जि० पौडीगढ़वाल उ. प्र.

प्रतियाँ
१०००

श्रीराम नवमी
सं० २०३६

* श्रीमते रामानुजाय नमः *

श्रीमत्पराशरभट्टार्य प्रणीता

अष्टश्लोकी प्रारभ्यते

—●—

अकारार्थो विष्णुर्जगदुदयरक्षाप्रलयकृद्
मकारार्थो जीवस्तदुपकरणं वैष्णवमिदम् ।
उकारोऽनन्यार्हं नियमयति सम्बन्धमनयो-
स्त्रयीसारस्त्यात्मा प्रणव इममर्थं समदिशत् ॥१॥

अन्वय—जगदुदय रक्षा प्रलय कृत् विष्णुः अकारार्थः, जीवः मकारार्थः तद् उपकरणं इदम् वैष्णवम्, उकारः अनयोः अनन्यार्हं सम्बन्धम् नियमयति, त्रयीसारः त्रात्मा प्रणव इमम् अर्थम् समदिशत् ॥१॥

भाषार्थ—परम पुरुषार्थ मोक्ष है। मुमुक्षु को रहस्यत्रय के अर्थ का सदा अनुसन्धान करना चाहिये। इस कारण श्रीपाराशर भट्टाचार्य ने उस रहस्यत्रय का विवरण रूप अष्टश्लोकी का निर्माण किया है। उसमें प्रथम श्लोक का अर्थ यह है (अ. उ. म्) ये तीन अक्षर मिलकर ओंकार बना है। इसलिए (अ. उ. म्.) ये तीन अक्षर ओंकार के अङ्ग हैं।

उन तीनों अक्षरों में से पहिले अकार का अर्थ कहते हैं।

(अकारार्थ) इति इस दृश्यमान् जगत् की उत्पत्ति, रक्षा व प्रलय को करने वाले भगवान विष्णु अकार वाच्य हैं। (अकारार्थो विष्णुः) (अक्षराणामकारोऽस्मि) वा (यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते) इत्यादि। (म्) का अर्थ जीवात्मा का बोधक है। यह दृश्यमान

जड़ प्रपञ्च वैष्णव नाम विष्णु से उत्पन्न है। उस जीव का उपकरण नाम भोग्य है। किं वा (जीवजातम्) इस पद का अध्याहार करके (वैष्णवमिदम्) जीवात्मा विष्णु से प्रकट होने वाला है। अतएव (तदुपकरणम्) उस विष्णु का ही शेषभूत नाम (दास) है। उ कार जीवात्मा व परमात्मा के शेषशेषीभाव (स्व-स्वामी भाव) रूपी जो सम्बन्ध है उसका ज्ञापक है।

भगवान नारायण सबके स्वामी हैं। जीव मात्र उनका दास है। (दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मनः परमात्मनः) यह ओंकार वेद त्रय का सार है। उस ओंकार का यह अर्थ है। यहाँ विस्तार भय से सूक्ष्म से बताया है। ॥१॥

मन्त्रब्रह्मणि मध्यमेन नमसा पुंसः स्वरूपं गतिः
गम्यं शिक्षितमीक्षितेन पुरतः पश्चादपि स्थानतः।
स्वातन्त्र्यं निजरक्षणं समुचिता वृत्तिश्च नान्योचिता,
तस्यैवेति हरेर्विविच्य कथितं स्वस्यापि नार्हं ततः ॥२॥

अन्वय—**मन्त्र, ब्रह्मणि, पुरतः, ईक्षितेन मध्यमेन नमसा पुंसः स्वरूपं शिक्षितम् पश्चात् ईक्षितेन नमसा पुंसः गम्यं शिक्षितम् स्थानतः अपि शिक्षितेन गतिः, शिक्षिता स्वातन्त्र्यम् निजरक्षणं समुचिता वृत्ति च अन्योचिता न, अपि तु तस्य हरेः अव इति विविच्य कथितं ततः स्वस्यापि अर्हं न ॥२॥**

भाषार्थ—पहिले श्लोक से ॐ पद का अर्थ कहा है। इस श्लोक में नमः पद का अर्थ कहेंगे। जीव का स्वरूप अनन्यार्हशेषत्व अनन्यशरणत्व, अनन्यभोग्यत्व रूप, आकार त्रय वाला है। इसीका प्रतिपादन करते हैं। (मन्त्र ब्रह्मणि) अष्टाक्षर मन्त्र सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। वह ब्रह्म है। उसमें (मध्यमेन) मध्यवर्ति द्वितीय नमः पद है वह जीव के अनन्यार्हशेषत्व रूप, जो स्वरूप उसकी गति

(उपाय) व (अनन्यशरणत्व) का और गम्य नाम प्राप्य (पुरुषार्थ) व अनन्य भोग्यत्व) का ज्ञापक है। यहाँ नमः पद तन्त्र से कहा है। दो नमः पदों की जगह एक ही नमः पद कहा है। अर्थ करते समय दो नमः पद करने से उनमें से एक नमः स-खण्ड, दूसरा अखण्ड जानना (स्थानतः) मध्य स्थान से उठाकर (पुरतः) पूर्व में अकार के साथ सखण्ड नमः पद का (ईक्षितेन) अन्वय करने से मः न, मैं (जीव) अपना शेष नहीं हूँ। किन्तु अकार वाच्य विष्णु का शेष हूँ। यह अर्थ होने से जीव का अनन्यार्हशेषत्व रूप स्पष्ट ज्ञात होता है। फिर दोनों नमः पदों का परस्पर (नमो नमः) यह अन्वय होने से नमः (स्वरक्षणार्थं प्रवृत्ति नाम शरण (मः) मेरी (न) नहीं किन्तु भगवान् की है। अर्थ=मैं एक नारायण के ही शरण हूँ।

इस प्रकार जीव का अनन्यशरणत्व स्वरूप ज्ञात होता है। फिर उस सखण्ड नमः पद का (नारायणाय नमः) नारायण पद के साथ अन्वय करने से सब प्रकार का कैङ्कर्य उस भगवान के ही योग्य है। मेरा नहीं। कारण मैं एक भगवान् का ही भोग्य हूँ। इस तरह जीव का अनन्यभोग्यत्व स्वरूप (शिक्षित) नाम ज्ञात होता है। कहे हुए बोधन का फल बताते हैं। (स्वातन्त्र्यमिति) जीव भगवच्छेष होने से स्वतन्त्र नहीं, भगवान ही स्वतन्त्र हैं। जीव स्वतन्त्र नहीं इसमें अनेकों प्रमाण हैं।

तुलसीकृत रामायण (**परवश जीव स्ववश भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥**) अहिर्बुध्न संहितायाम् अध्याय ५२ (अनादि वासनारूढ़मिथ्याज्ञाननिबन्धना। आत्मात्मीयपदार्थस्था या स्वातन्त्र्य सत्तामतिः॥ श्लोक २५ तथाहि (मेनेत्येवं समीचीनबुद्धया साऽत्रनिवार्यते॥ नाहं मम स्वतन्त्रोऽहं नास्मीत्यस्यार्थ उच्यते॥ न मे देहादिकं वस्तु सशेषः परमात्मनः। इति बुद्धया निवर्तन्ते तास्ताः स्वयमनीषीका॥ अनादि वासना जातैर्बोधैस्तैस्तै विकल्पितैः। रुषितं यद्दृढं तत्तत्स्वतन्त्र्य स्वत्त्वधीमयम्॥ तत्तद्वैष्णव सार्वात्म्य प्रतिबोध

समुत्थया। नम इत्येतया वाचा नतन्त्रा स्वस्मादपोह्यते ।। इति श्लोक २५ से २६ तक विस्तारभय से ज़्यादा नहीं लिखा। इसलिए जीव अपनी रक्षा स्वतः नहीं कर सकता किन्तु भगवान ही रक्षा करते हैं।

कहा है (निजरक्षणमिति) समुचित वृत्ति ब्यापार नाम (कैङ्कर्य) उसी भगवान का करना चाहिए। इन कारणों से जीव अपना भी शेष नहीं किन्तु भगवान् का ही शेष है (स्वस्वापीति) तस्य हरेरेवोचिता (इन्यन्वय) तमेव शरणं गच्छेत् सर्वधातारमच्युतम् ।। दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मनः परमात्मनः ।। इति प्रमाण अनुसन्धेय हैं।

नमः पद से जीव भगवान का शेष भूत है। परन्तु कोई आचार्य इससे भागवत् शेष मानते हैं। तथा मुमुक्षुप्पडि ।। अस्मिन्पदे तदीय शेषत्वस्यार्थादनुसन्धेयत्वमाह ।। प्राप्तमित्यादिना सूत्रम् ८६। प्राप्तं च त्वद्दासदास्यम् ।। इत्युक्तप्रकारेणात्र भागवत शेषत्व मनुसन्धेयम् ।। एवमर्थादनुसन्धेयं भागवतशेषत्वपदान्तरेऽपि केचिदनु सन्दधत इत्याह।

मुमुक्षुप्पडि ।। सूत्र ९० 'अकारे' इत्याहुः;'उकारे' इति चाहुः।

भगवत्पारतन्त्र्य ज्ञान जनित भक्ति प्रवृद्ध तद्दास्यैक रस लब्ध सत्ता स्थिति प्रवृत्तिक परम भागवत विषयशेषत्वं तच्छेषत्व प्रीत्यभि वृद्धिकारितत्वात् नानन्यार्हत्वेन विरुध्यते तदिदं प्रमाण शतै प्रतिपाद्यते।

तस्य यज्ञः वराहस्य विष्णोरमित तेजसः।
प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषा मपि नमो नमः ।।
अराधनानां सर्वेषां विष्णोराज्ञधनं परम्।
तस्मात्परतरमं प्रोक्तं तदीयाराधनं नृप ।।
नारायणैक निष्ठस्य या या चेष्टा तदर्चनम्।
यो यो जल्प स स जपस्तदधानं यन्निरीक्षणम् ।।

विस्तारभय से ज्यादा नहीं लिखा।

अकारार्थायैव स्वमहमथ मह्यं न निवहाः,
नराणां नित्यानामयनमिति नारायणपदम् ।
यमाहाऽस्मै कालं सकलमपि सर्वत्र सकला-
स्ववस्थास्वाऽऽविस्युर्मम सहजकैङ्कर्यविधयः ।।३।।

अन्वय—स्वम् अकारार्थाय एव अथ अहम् मह्यं न नित्यानां नराणां निवहा अयनम् इति नारायण पदं यम् आह अस्मै सकलं अपि कालं सर्वत्र सकलासु अवस्थासु मम सहज कैङ्कर्य विधयः आविः स्युः ।।३।।

भाषार्थ—द्वितीय श्लोक से नमः पद का अर्थ कहा। अब नारायण पद का अर्थ बताते हैं। (अकारर्थायेति) अहम् (जीव) मह्यं नाम अपना (स्वं) स्वशेष भूत नहि किन्तु अकार वाच्य नारायण का ही शेष हूँ। यहाँ नर शब्द परमात्मा के वात्सल्य, ज्ञान, शक्त्यादि दिव्य गुणों का द्योतक है। (ते च गुणाः सत्यज्ञानानन्दामलत्वानन्त-त्वानि)। (इदमिदं न भवति इति परिच्छेदानर्हत्वमेव। सर्व वस्तु समानाधिकरण्यार्हत्वं वस्त्वपरिच्छेद इति यावत्। अत्र प्रमाणं (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) इति। अमलत्वश्रुतिः (निष्कलं निष्क्रियम्) अपहत पाप्मा इत्यादि मुमुक्षुप्पडि प्रबन्धे द्रष्टव्या) और जीव को भी बोध कराते हैं।

भगवान् के गुण और जीव नित्य हैं। नित्यभूत जीव तथा भगवान् के गुणों का समुदाय उनका अयन नाम स्थान वही नारायण है। इसीसे ही परमात्मा का नारायण पद ज्ञान कराता है। यहां पर अयन शब्द (इण् गतौ) धातु से सिद्ध होता है। (ईयते इत्ययनम्) इस कर्म व्युत्पत्ति से अयन पद प्राप्य का बोध कराता है। (ईयते अनेन) इस करण व्युत्पत्ति से अयनपद प्रापक का बोध कराता है। (यन्ति अस्मिन्) इस अधिकरण व्युत्पत्तिसे आधार का बोधक है। इस प्रकार श्रीनारायण ही जीवों का प्राप्य, प्रापक तथा आधार है। य

सिद्ध हुआ। समस्त काल, समस्त देशों में तथा स्थिति गमनादि सब अवस्थाओं में हमें उक्त श्रीनारायण का सब प्रकार से समस्त कैङ्कर्य प्राप्त हो जीव की यही इच्छा होनी चाहिए। कारण कैङ्कर्य के बिना वास्तविक शेषत्व सिद्ध नहीं होता। (सकलं कालम्) यहां पर अत्यन्त संयोगार्थ में द्वितीया जाननी चाहिए।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव।
नारो नराणां सन्घात स्तस्याह मयनं गतिः॥
तेनाऽहं मुनिभि र्नित्यं नारायण इतीरितः।
आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्॥

इत्यादि अत्र प्रमाणाअनुसन्धेया। भगवता स्वयं उक्तम् (मत्कर्म परोभव॥ इत्यादि॥३॥

देहासक्तात्मबुद्धिर्यदि भवति पदं साधु विद्यातृतीयं,
स्वातन्त्र्यान्धो यदि स्य त्प्रथममितरशेषत्वधीश्चेद्द्वितीयम्।
आत्मत्राणोन्मुखश्चेन्नम इति च पदं बान्धवाभासलोलः
शब्दं नारायणाख्यं विषयचपलधीश्चेच्चतुर्थी प्रपन्नः॥४॥

अन्वय—**यदि प्रपन्नस्य देहासक्तात्म बुद्धिः भवति तदा प्रणव तृतीय पदम् (म्) साधु विद्यात्। यदि स्वातन्त्रान्ध स्यात् तद प्रथम (अकार्थम्) साधु विद्यात्। यदि इतर शेषत्व धी स्यात् तदा द्वितीय पदं साधु विद्यात्। यदि आत्मत्राणोन्मुख स्यात् तदा नमः पदं साधु विद्यात्। यदि बांधवा भास लोल स्यात्। तदा नारायण पदं साधु विद्यात् यदि विषयचपलधी स्यात् तदा चतुर्थी (आय्) साधु विद्यात्॥४॥**

भाषार्थ—ज्ञानवान पुरुष को कदाचित् कारण विशेष से देहात्मक बुद्धी (अज्ञान) हो जाय उसकी निवृत्ति का उपाय कहते हैं। (देहेति) भगवद्दास प्रपन्न जन को शरीर में आत्म बुद्धि होने पर

(यह देह ही आत्मा है दूसरा नहीं, यह अज्ञान होने पर) अष्टाक्षर मन्त्र में (तृतीय म् कार पद) है उसके अर्थ का अनुसन्धान करे। क्योंकि जीव वाचक (म्) यह पद (मन ज्ञाने) धातु से बना है। इस कारण जो स्वयं ज्ञानवान है वह जीवात्मा है। देह ज्ञानवान् नहीं यदि देह ज्ञानवान हो तो मृत शरीर को भी ज्ञान होना चाहिए। वह होता नहीं। इसलिए मकारार्थ के अनुसन्धान से देह आत्मा अज्ञान नष्ट होता है एवं मन तथा बाह्येन्द्रियां भी आत्मा नहीं हैं, ज्ञानवान् नहीं ज्ञान साधन हैं। कहा है (आत्मा ज्ञानमयः परः) भक्त को अपने में स्वातन्त्र्य बुद्धि हो जाय कि मैं स्वतन्त्र हूँ यह अज्ञान होने पर अष्टाक्षर में जो प्रथम पद अकार है उसके अर्थ का अनुसन्धान करे। कारण समस्त प्रपञ्च का जो स्वामी है, वह अकार वाच्य है।

स्वामी ही स्वतन्त्र होता है। जीव उसका दास है स्वतन्त्र नहीं। इस प्रकार अकारार्थानुसन्धान से स्वातन्त्र्यत्वरूप अज्ञान नष्ट होता है। कहा भी है। (पिता च रक्षकः शेषीभर्ताज्ञेयो रमापतिः। स्वाम्याधारो ममात्मा च नारायणः परं ब्रह्म) इत्यादि ॥ भगवान्, लक्ष्मी, भागवत, तथा आचार्य इन चार से प्रथक जो देवतान्तरादि राजादि जीवान्तर है उनका शेषत्व बुद्धिरूप अज्ञान उत्पन्न हो तो अष्टाक्षरस्थ जो द्वितीय उकार पद है उसका अनुसन्धान करे। कारण उक्त (उकार) नियम बोधक है। इससे जीव भगवत्, लक्ष्मी, भागवत आचार्य का ही दास है, और का नहीं। यह अर्थ प्रणव से सिद्ध होता है। वह (उकारार्थ के मनन से इतर शेषत्व बुद्धिरूप अज्ञान नष्ट होता है। 'मैं अपनी रक्षा स्वयं कर सकता हूँ।' यह अज्ञान उत्पन्न होने पर अष्टाक्षर में जो (नमः) पद है उसके अर्थ का अनुसन्धान से वह अज्ञान नष्ट होता है। कारण नमः पद का अर्थ है कि मेरा कुछ नहीं सब पदार्थमात्र भगवान् का है। भगवान ही जीव का रक्षक है। जब जीव का कुछ है ही नहीं तो अपनी रक्षा कैसे कर सकता है। इससे नमः पदार्थके अनुसन्धान से स्वयंरक्षकत्वबुद्धिरूप अज्ञान कष्ट होता

है। (बाँधवाभासलोलः) हितकारी बान्धव होता है जो भगवधाम प्राप्ति में सहकारी (उपयोगी) हो। पुत्र कलत्राहि भगवत्प्राप्तिमें विघ्न रूप हैं। इस से बांधवामास है। उनमें यदि आसक्ति हो तो नारायण पद के अर्थ का अनुसन्धान करे उसके अनुसन्धान से भगवान नारायण ही जीव के बाँधव हैं। पुत्र कलत्रादि नहीं, पुत्र कलत्रादि शत्रु हैं यह ज्ञान होने से सांसारिक बांधवों में आसक्ति निवृत्ति होती है। कहा भी है॥ (महत्यापदि सम्प्राप्ते स्मर्तव्यो भगवान हरिः) (माता, पिता तथा भ्राता निवासः शरणं सुहृत्) इत्यादि। यदि विषयों में उपभोग की वासना उत्पन्न हो तो नारायण पदोपरि वर्तमान चतुर्थी विभक्ती के अर्थ का अनुसन्धान करे। कारण चतुर्थी का अर्थ है कि जीव को भगवत्प्रीत्यर्थ भगवत्कैङ्कर्य करना चाहिए। विषयाशक्ति जीव का धर्म नहीं है। चतुर्थी के अर्थ को जानने से विषय दुर्वासना नष्ट होती है। लक्ष्मणजी का बचन है॥ (अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते।) भाषा कवि—

सांचे श्रीराधारमण झूठो सब संसार।
वाजीगर को खेलनो मिटत न लागे वार॥४॥

नेतृत्वं नित्ययोगं समुचितगुणजातं तनुख्यापनं चोपायं कर्त्तव्यभागं त्वथ मिथुनपरं प्राप्यमेवं प्रसिद्धम्।
स्वामित्वं प्रार्थनाञ्च प्रबलतरविरोधिप्रहाणं दशैतान्,
मन्तारं त्रायते चेत्यधिगतनिगमः षट्पदोऽयं द्विखण्डः॥५॥

अन्वय—नेतृत्वं, नित्ययोगं, समुचितगुणजातं, तनुख्यापनं चोपायं कर्तव्यभागं, मिथुनपरं, प्राप्यमेवं, प्रसिद्धं, स्वामित्वं, प्रार्थनां प्रबलतरविरोधिप्रहाणं, मन्तारं च इति अधिगत नियम षठ् पदः अयं द्विखण्डः त्रायते॥५॥

भाषार्थ—उक्त चार श्लोकों से अष्टाक्षर को कहकर अब पंचम

पंचम श्लोक से द्वयमन्त्र के पदार्थ को कहते हैं (नेत्रीत्वमिति)(श्रीमन्) (१) श्रीशब्द का अर्थ नेत्रीत्वं नाम पुरुषकारत्व है। भगवत् कृत जीव स्वीकार में लक्ष्मी जी पुरुषकार करने वाली हैं। कहा है (लक्ष्मीपुरुषकारत्वे वृतवन्तो वरानने) २ मतुप् प्रत्यय का अर्थ (नित्य योगत्व) नित्य सम्बन्ध है। कारण श्रीलक्ष्मी जी का नारायण के साथ नित्य संयोग है।। अत्र श्रीशब्द लक्ष्मीजी का वाचक है। (श्रयन्तीं श्रियमाणं च शृणातीं शृण्वतीमपि शृणाति निखिलान्दोषान् शृणाति गुणैर्जगत् ।। श्रीयते चाखिलै र्नित्यं श्रयते च परम्पदम्। इत्यादि अनेक प्रमाण बलात्—

'पांचरात्रस्यकृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम् ।।' इत्युक्त प्रकारेण भगवत्प्रणीते श्रीपांचरात्रशास्त्रे उपायत्वस्य स्वनिष्ठत्वेन पुरुषकारत्वस्य तन्निष्ठतया चोक्तं खलु (लक्ष्मीपुरुषकारत्वे) इति क्षमादि उद्भावना द्वारा भगवदीयोपाय भाव प्रयोजकत्वरूपपुरुषकारत्वस्य लक्ष्म्यास्तदितरावृत्तित्वे सति तद्वृत्तिरूपधर्मत्वेनोक्तम्। (नान्यथा लक्षणं भवेत्) इति प्राप्तिपूर्वभावित्वेन पुरुषकारत्वातिरिक्तत्वेन प्राप्युपयोगित्वेन चासाधारण धर्मस्याभावकथनात् ।। इति मुमुक्षुप्पडिभाष्ये ।। (३) (नारायण) नारायण शब्द का अर्थ है। (समुचितगुणजातम्) नाम भगवच्छरणागति योग्य भगवान् के वात्सल्यादि गुणों का समूह कहा है। कहा भी है (ज्ञान, शक्तिबलैश्वर्य वीर्यतेजांस्य शेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ।। इत्यादि (४) (चरणौ) चरण शब्द (तनुख्यापनम्) भगवान के शरण योग्य दिव्य विग्रह का ख्यापक नाम बोधक है।। (५) (शरणम्) शरणम् शब्द उपाय का बोधक है। संसार निवृत्ति के लिए भगवच्छरण ही उपाय है। (६) (प्रपद्ये) यह पद कर्तव्यता का बोधक है और निश्चय का भी बोधक है।

भगवच्छरणागति करके उस पर विश्वास करना जरूरी है। (७) (श्रीमते) इस पद का परम प्राप्य श्रीलक्ष्मीनारायण का मिथुन

(युगल स्वरूप) अर्थ है। (८) (नारायणाय) नारायण पद का स्वामित्व अर्थ, है। (९) नारायण पद में वर्तमान चतुर्थी विभक्ति का प्रार्थना अर्थ है। भगवान के कैङ्कर्य प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। (१०) (नमः) नमः पद का अर्थ अहंता, ममतारूप प्रबल विरोधियों की निवृत्ति है। कारण जीव स्वतन्त्र नहीं, इससे अहंता और ममता जो पदार्थ मात्र हैं वे भी भगवान के ही हैं। जीव के नहीं, इससे अहंता ममता का त्याग करना जरूरी है। जो इन दश पदार्थों का अनुसन्धान करता है। उसकी यह द्वयमन्त्र रक्षा करता है। यह मन्त्र वेद से प्राप्त हुआ है। इसके छः पद हैं। दो खण्ड हैं। कहा भी है।

द्वयेन मन्त्ररत्नेन मत्प्रियेण भजेत्सदा।
अचिरादस्मत्प्रसादेन मल्लोकं स च गच्छति ॥५॥

ईशानां जगतामधीशदयितां नित्यानपायां श्रियं
संश्रित्याश्रयणोचिताखिलगुणस्यांघ्री हरेराश्रये।
इष्टोपायतया श्रिया च सहितायाऽऽत्मेश्वरायार्थये,
कर्त्तुं दास्यमशेषमप्रतिहतं नित्यं त्वहं निर्ममः ॥६॥

अन्वय—जगतां, ईशानां अधीशदयितां, नित्यानपायां श्रियं संश्रित्य (आश्रत्य) आश्रयणोचिताखिलगुणस्य हरेः अङ्घ्री आश्रये। श्रिया सहिताय आत्मेश्वराय इष्टोपायतया अहं तु निर्ममःसन् अशेषम् दास्यं कर्तुं आश्रये ॥६॥

भाषार्थ—द्वयमन्त्र के अर्थ को कहकर अब वाक्यार्थ कहते हैं। (ईशानामिति) समस्त प्रपंच की ईश्वरी समस्त जगत् के ईश्वर श्रीनारायण की प्रिया सदा उनके साथ-साथ रहने वाली श्रीलक्ष्मी उनके प्रथम शरण होकर लक्ष्मी को पुरस्कार बनाकर आश्रयण योग्य वात्सल्य शक्ति आदि सर्वगुण पूर्ण श्रीनारायण के चरणों का आश्रय

लेता हूँ। कारण श्रीनारायण चरण शरण ही संसार निवृत्ति के लिए सबसे बढ़कर उत्तम, उपाय है। श्रीलक्ष्मी सहित श्रीनारायण (अशेष) सब प्रकार से अप्रत्तिहत प्रतिबन्ध रहित नित्य (निरन्तर) सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वावस्थाओं में (दास्य) कैङ्कर्य करने को (अर्थये) प्रार्थना करता हूँ।

मैं अहंता ममता रहित हूँ। कारण सब पदार्थ मात्र भगवान के हैं। मेरा कुछ नहीं। मैं स्वतन्त्र भी नहीं हूँ। भगवान् ही स्वतन्त्र हैं। स्वामी हैं। मुझ जीव को उनका कैङ्कर्य अवश्य करना चाहिए। यही मुझ जीव का स्वरूप है ॥६॥

मत्प्राप्त्यर्थतया मयोक्तमखिलं सन्त्यज्य धर्मं पुन-
र्मामेकं मदवाप्तये शरणमित्यार्तोऽवसायं कुरु ।
त्वामेवं व्यवसाययुक्तमखिलज्ञानादिपूर्णो ह्यहं,
मत्प्राप्तिप्रतिबन्धकैर्विरहितं कुर्यां शुचं मा कृथाः ॥७॥

अन्वय—मत्प्राप्त्यर्थतया मयोक्तं अखिलं धर्मं संत्यज्य पुनः आर्तमद्वाप्तये मामेकं प्रति शरणं इति अवसायं कुरु। एवं व्यवसाय युक्तं त्वां अखिलज्ञानपूर्णो अहं मत्प्राप्ति प्रतिबन्धकैः विरहितं कुर्याम् शुचं मा कृथाः ॥७॥

भाषार्थ—अब चरम श्लोक की व्याख्या कहते हैं। (मत्प्राप्त्यर्थतयेति) हे अर्जुन मैंने अपनी प्राप्ति के निमित्त (सर्वधर्मान्) इस श्लोक के पूर्व जो भी कर्मयोग, ज्ञानयोग रूप धर्म साधन कहे हैं। उन सबको त्याग करके (आर्त) साधनान्तर के स्वरूप विरोध से दुःखी तू मेरी प्राप्ति के लिए मेरी शरण का अध्यवसाय (विश्वास) कर। कारण तू मेरी ही शरण ग्रहण, कर। जो तू मेरे कहे अनुसार मेरी शरण लेगा तो शरण प्राप्ति में विघ्न करने वाले जितने पाप कर्म हैं उनसे रहित करके अपने निजधाम को बुला लूँगा तू कोई चिन्ता मत कर।

'अत्र धर्मशब्दस्य दृष्ट फल साधनेषु च व्याप्तत्वात्' इति धर्मत्वं नालौकिकफलसाधनत्वमात्रम् कार्यादीनां लौकिकत्वात्, नाप्यदृष्ट द्वारा साक्षान्मुखोल्लास हेतुभूते दीपारोपणादौ धर्मत्वं न स्यात्। किन्तु शास्त्रैकगम्यफलसाधनताकम् ॥ इति ॥

धर्मशब्दस्य दृष्टफलसाधनेषु च व्याप्तत्वात् तद् व्यावर्तयति ।। अत्रोक्तोधर्मशब्दः न दृष्टफलसाधनानि वदति किन्तु मोक्षफलसाधनानि, वदति ।। अत्र (सर्वधर्मान्) अतः परं बहुबचनार्थमाह। ते च धर्माः श्रुतिस्मृतिविहिता बहुविधा इति वहुवचन प्रयोगः कृतः ।। श्रुतिस्मृति चोदितान्नित्य नैमित्तिकादि रूपान् कर्मयोगाद्युपायान् ।। धर्मान् इति।।(परित्यज्य) अत्र उक्तत्यागोनाम केवलं त्यजनं न भवति किन्तु पूर्वोक्त श्रुतिस्मृति उक्त अनुपायप्रकारानुसन्धाय (रजतभिन्न शुक्तौ रजतबुद्धिकर्तार इव। भगवत्प्राप्त्युपायापेक्षावन्तो वयमनुपायेषूपायबुद्धि कृतवन्तः इति (परित्यज्य) अत्र (परि) इत्युपसर्गेण-पातकादि त्यागवत्, रुचिवासनाभ्यां लज्जया सहापुनरन्वयं त्यागः कर्तव्यः इत्युच्यते ।। मुमुक्षुप्पडौ विस्तरेण दृष्टव्यः ।।

त्वज्ज्ञानशक्ति करुणासु सतीषु नेह पापं पराक्रमितुमर्हति मामकीनम् ।

मेरी शरण ग्रहणकर मुझ में दृढ़ विश्वास रख। कहा भी है ।

काहू के बल ज्ञान को काहू के आचार ।
व्यास भरोसे कुँवर के सोवत पाव पसार ।।७।।

निश्चित्य त्वदधीनतां मयि सदा कर्माद्युपायान् हरे !
कर्त्तुं त्यक्तुमपि प्रपत्तुमनलं सीदामि दुःखाकुलः ।
एतज्ज्ञानमुपेयुषो मम पुनः सर्वापराधक्षयं
कर्त्तासीति दृढोऽस्मि ते तु चरमं वाक्यं स्मरन् सारथेः
।।८।।

अन्वय—हे हरे मयि सदा त्वदधीनतां निश्चित्य कर्मा द्युपायान् कर्त्तुं त्यक्तुं प्रपत्तु मपि अनलं दुःखाकुलः सीदामि सारथेः इति चरम वाक्यं स्मरन् एतत् ज्ञानं उपेयुषः मम पुनः सर्वापराधक्षयं कर्तासि इति दृढोऽस्मि ॥८॥

भाषार्थ—पहिले सात श्लोकों से तीनों मन्त्रों की व्याख्या करके अर्जुन के ही मुख से वैष्णवों के अध्यवसाय का अनुवाद करते हैं। (निश्चित्येति) भगवान के प्रति अर्जुन कहते हैं। हे हरे (पाप हरणशील भगवान्(मयि) मुझ में आत्माको सदा(त्वदधीनतां निश्चित्य) आपके आधीन निश्चय कर आपके आधीन हूँ। स्वतन्त्र नहीं, आप ही स्वतन्त्र हैं। स्वातन्त्र का अभिप्राय। (शास्त्राणि सर्वाणि एक कोटौ स्वमेककोटौइति स्थितस्यास्य श्लोकस्य शास्त्रविहितान् सर्व-धर्मान् सवासनं त्याजयित्वास्य चेतनस्य स्वयमेव निरपेक्ष साधनं भूत्वा प्राप्ति प्रतिबन्धकानि सकलपापानि दूरीकृत्य स्वं प्रापयितुः स्वाधीन सकल प्रवृत्तिकस्येश्वरस्य स्वातन्त्रे तात्पर्यम् इत्यर्थः) इदं मुमुक्षुप्पडौ द्रष्टव्यं सूत्र ८९ ॥ चरम श्लोक प्रकरणे।

यह निश्चय करकेभी आपकी प्राप्ति के उपाय जो पूर्व कहे कर्म-योग ज्ञानयोगादि हैं, मैं उनको कर भी नहीं सकता। कारण कि वे दुष्कर हैं। दुःख बहुल हैं। विघ्न सहित हैं और अनेक हैं। मैं उनके करने में असमर्थ हूँ और उनको छोड़ भी नहीं सकता। कारण शास्त्रोक्त नित्य नैमित्तिक कर्म त्याग से पाप होता है। कहा भी है।

श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे यस्तामुल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञाछेदी मम द्रोही मद्भक्तो न च वैष्णवः॥ इति

और आपने सर्व धर्म परित्याग पूर्वक शरणागति करना कहा, मैं उसको भी नहीं कर सकता। कारण कि तदङ्ग भूत सर्वधर्म परित्याग करना असक्य है। इन कारणों से मैं दुःख से व्याकुल होकर (सीदामि) चिन्ता समुद्र में डूब रहा हूँ। तथापि आपके (स्व-धर्मान्) इस अन्तिम वाक्य को याद करता हुआ यह दृढ़ विश्वास

रखता हूँ कि आपके इस अन्तिम वचन को सुनकर मुझे जो ज्ञान हुआ है कि आप मेरे सब अपराधों को यानि पापों को नाश करेंगे इस विश्वास से मेरा संसार दुःख मिट जायगा। कहा है---

शाखानामुपरिस्थितेन मनुना मूलेन लब्धात्मकः ।
सत्ता हेतु सकृज्जपेन सकलं काल द्वयेन क्षिपन् ॥
वेदोत्तंसविहारि सारथिगिरां गुम्फेन विश्रम्भितः ।
सारज्ञो यदि कश्चिदस्ति भवने नाथः सयूथः स नः ॥
अथ पातक भीतस्त्वं सर्वभावेन भारत ।
विभुत्व न्य संभार नारायण परो भव ॥
वृथैव भवतो याता भूयसी जन्म संततिः ।
तस्यामन्यतमं जन्म संचिन्त्य शरणं व्रज ॥

पराशरगोत्रेण नारायणाचार्यात्मजेन गोविन्दाचार्यशास्त्रिणा
कृता सान्वयाष्टश्लोकी भाषा व्याख्या
समाप्ता ।

कृपया विज्ञैस्त्रुटयः क्षन्तव्याः

पुस्तक प्राप्ति स्थान–

१–श्रीविजयराघव मन्दिर

विभीषण कुण्ड अयोध्या, जि० फैजाबाद (उ० प्र०)

२–वासुदेव रामानुजदास (बृजलाल गोइनका)

गीता भवन—३, पो० स्वर्गाश्रम, जि० पौड़ीगढ़वाल (उ० प्र०)।

मुद्रक—श्रीरङ्गनाथ प्रेस, वृन्दावन